भारतीय संस्कृति विकास और पर्यावरण

डॉ0 उत्तरा यादव,

एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग,
महिला विद्यालय डिग्री कॉलेज, लखनऊ

"मेरा मानना है कि विकास, सतत्, टिकाऊ और समाजवेशी होना चाहिए।"

– मा0 प्रधानमंत्री नरेन्द्र दामोदर दास मोदी

भारतीय ऋषि–कृषि संस्कृति, अध्यात्म,पर्यावरण,सामाजिक सरोकार एवं विकास ऐसे पांच सूत्र है, जो विश्व को एकता, प्रेम एवं विकास के सूत्र में पिरोनें में सक्षम है। इनमें रचे–बसे जीवन मूल्य, संस्कार, संस्कृति व सामाजिका सरोकार विश्व मानवता का उत्थान व विकास में सतत् भूमिका निभा रहें है। हमारी संस्कृति ही हमारी विरासत है, जिस पर हमें गर्व है। यह सत्य है कि कृषि समस्त संस्कृतियो की जननी है और हमारे यहाँ खेती–बाड़ी हमारी जीवन पद्धति है। प्रत्येक मनुष्य एवं भारतीय की दैनिकचर्या कृषि से ओत–प्रोत है, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष अपने भोजन के लिए कृषि पर ही निर्भर है। जब विश्व में बाकी ओर सभ्यताएं बसी हुई नहीं थी, तब भारत में *कृषि–ऋषि* एक अग्रणी सभ्यता थी। ऋषि–कृषि परम्परा, संस्कृत–हिंदी की जुगलबंदी तथा गुरु–शिष्य और योग परम्परा के कारण ही बृहत्तर भारत को प्राचीन एवं मध्य काल में *'सोने की चिड़िया'* कहा जाता था। भारतवर्ष गांवों, खेतों–खलिहानों तथा किसानों और संस्कृतियों का देश है। **"हिन्दी हैं हम हिन्दोस्ताँ हमारा"** अर्थात यह देश हिन्दी और हिन्दुस्तानियों का है। भारत की समृद्धि खेतों–खलिहानों तथा संस्कृति (संस्कृत–हिन्दी) से निकलती है। प्राचीन भारत और अंग्रेजी शासन से पहले लगभग आज से 250 से 300 वर्ष पहले भारत का कृषि–पशुपालन उत्कृष्ट कोटि की थी तथा भारत उत्पादन–उत्पादकता के मामले में विश्व में प्रथम स्थान पर था। भारत के स्तर की खेती मात्र चीन में होती थी। भारत की भूमि, जलवायु, कृषि तकनीक एंव किसानो का ज्ञान सर्वश्रेष्ठ था तथा इस देश में प्रकाश (सूर्य) की उपलब्धता पूरे वर्ष रहती है। उस समय भारत का कृषि उत्पादन एवं व्यापार विश्व के कुल अन्न उत्पादन एवं व्यापार का लगभग तीस–तीस प्रतिशत था तथा भारत देश में भारतीय कृषक सबसे समृद्ध वर्ग था। खेती–वाड़ी भारत की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार था। कृषि एवं पशुपालन की उपयोगिता एवं उपादेयता को देखते हुए ही एक प्रसिद्ध कहावत प्रचलित *थी* ***"उत्तम खेती, मध्यम बान, निषिद चाकरी भीख निदान।"***

भारत में शिक्षा नीति लागू करने के अपने प्रस्ताव को लार्ड मैकाले द्वारा ब्रिटिश संसद में दिनांक 02.02.1835 को दिये गये अपने उद्बोधन से भारतीय संस्कृति एवं विरासत तथा भारतीयों और भारतीयता के सम्बन्ध में भली–भांति समझा जा सकता है। ***"मैं पूरे भारत का भ्रमण किया और मैंने एक व्यक्ति नहीं देखा जो भिखारी अथवा चोर हो। इतनी सम्पदा, इतना उच्च नैतिक मूल्य, इतनी मानसिक क्षमता, मैंने इस देश में देखी है, कि मैं नहीं सोचता कि हम इस देश को कभी जीत पायेंगे, जब तक कि हम इस राष्ट्र की रीढ़ ही न तोड़ दें, जो इसकी आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक विरासत है। और इसलिये मैं प्रस्तावित***

करता हूं कि यदि हम इनकी पुरानी एवं प्राचीन शिक्षा पद्वति, इनकी संस्कृति को बदल दें, ताकि भारतीय सोचने लगे कि वह सब कुछ जो विदेशी और अंग्रेजी है, अच्छा है और हमसे बेहतर हैं, वे अपना स्वमान, अपनी मौलिक संस्कृति, खो देंगे और वही हों जायेंगे जो हम चाहते हैं, वास्तव में एक प्रभुत्व राष्ट्र।''

आज 180 साल बाद हम अपनी संस्कृति एवं विरासत को गवांकर वही हो गये है जिसकी परिकल्पना सन् 1835 में मैकाले ने की थी।

समाज एवं मानव तथा पर्यावरण और प्रकृति का आदि काल से आपस में अटूट संबंध रहा है। सभ्यता के विकास में प्रकृति ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। विकास के आरम्भिक चरण में कोई भी जीवधारी या मनुष्य सर्वप्रथम प्रकृति के साथ अनुकूल होने का प्रयास करता है, इसके पश्चात् वह धीरे–धीरे प्रकृति में परिवर्तन करने का प्रयास करता है। परंतु अपने विकास क्रम में मानव की बढ़ती भौतिकवादी महत्वकांक्षाओं ने पर्यावरण में इतना अधिक परिवर्तन ला दिया है कि मानव और प्रकृति के बीच का संतुलन, जो पृथ्वी पर जीवन का आधार है, धाराशायी होने के कगार पर पहुंच गया है। साथ ही मानव की अदूरदर्शी विकास प्रक्रियाओं ने विनाशात्मक रूप धारण कर लिया है।

'पर्यावरण' शब्द अंग्रेजी शब्द environment का हिन्दी रूपान्तरण है। इसकी उत्पति फ्रेंच शब्द' इनवायरन' से हुई है जिसका अर्थ 'परिवेश' या 'आस–पास' अथवा 'चारों ओर' है। पर्यावरण को भूमि, जल, वायु, वनस्पति तथा प्राणि जगत, जो हमारे आस–पास विद्यमान है, के प्रकृतिक जगत के रूप में वर्णित किया जा सकता है। शब्दकोश में पर्यावरण का अर्थ है– परिवेश (आस–पास) वह वाह्य दशा जो मनुष्यों, जन्तुओं या वनस्पतियों के रहन–सहन या काम–काज की दशा के विकास अथवा वृद्धि को प्रभावित करती है। आरंभ में पुर्वकालीन मानवों के पर्यावरण में, केवल पृथ्वी के भौतिक पहलू (भूमि, हवा, जल) तथा जैव'समुदाय (पेड़ पौंधे तथा संस्था) शामिल थे। लेकिन समय एवं समाज के विकास के साथ, मानव ने अपने पर्यावरण का दायरा सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक कार्यों के द्वारा बढ़ाया । अतः पर्यावरण का संबंध उस कुल दशा से है जो किसी निश्चित समय पर मनुष्य के आस–पास रहती है। अतः यहॉ मनुष्य के निम्नलिखित तीन पहलुओं का उल्लेख करना सार्थक होगाः–

1. भौतिक मानव जैविक समुदाय का अंग होता है तथा इसी प्रकार इसे अन्य जैविक जनसमुदाय की तरह ही भौतिक पर्यावरण के मूलभूत तत्वों जैसे–हवा, पानी भोजन आवास आदि की आवश्यकता हेती है तथा यह अपशिष्टों को परिस्थितिकी तंत्र में विसर्जित करता है।
2. सामाजिक मानव सामाजिक संस्थाओं एवं सामाजिक संगठनों की स्थापना एवं संरचना करता है तथा अपने अस्तित्व, हित एवं कल्याण की रक्षा के लिए कानून तथा नीतियॉ बनाता है।
3. आर्थिक मानव भौतिक तथा जैविक वातावरण से संसाधनों को कौशल तथा तकनीकी के द्वारा, उत्पन्न करता है तथा इसका उपयोग करता है।

प्रागैतिहासिक काल से आधुनिक काल तक मानव तथा पर्यावरण के बीच बदलते संबंधों को निम्नलिखित चार कालखंडों में विभाजित किया जा सकता है, यथा–1. शिकारी तथा भोजन संग्रहक 2. पशु पालन तथा ग्राम्य जीवन 3. खेतीबाड़ी एवं बागवानी तथा 4. विज्ञान, तकनीकी तथा औद्योगीकरण्ज्ञं

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, जिसमें समूह के साथ रहने की नैसर्गिक प्रवृत्ति रहती है। चूॅकि मनुष्य सबसे अधिक अभिव्यक्तशील है।

किसी निश्चित क्षेत्र में साथ में रहने वाले व्यक्ति के समूह एक समुदाय का निर्माण करते हैं। यह जातियों की एक संरचना होती है। आधुतिक तकनीकी एवं उन्नतिशील विज्ञान के ज्ञान से सुसज्जित मानव पर्यावरण प्रक्रिया को बदलने का एक महत्वपूर्ण कारक हो गया है। इस बात को भी पूर्ण रूप से समझना होगा कि प्रकृति के किसी भी एक अवयव (जैसे– वायु, जल, भूमि, वनस्पति तथा प्राणि) की बाधा से प्रकृति में असंतुलन की संभावना बढ़ जाती है। प्राकृितिक प्रक्रियाएँ अथवा मानवीय घटक कभी–कभी प्राकृतिक वातावरण को बिगाड़ देते हैं जो मानव समाज के लिए आपदा का कारण (यथा– भूकम्प, ज्वालामुखी, बाढ़, चक्रवात) बन जाते हैं। इसके परिणमस्वरूप जान–माल का काफी नुकसान होता है। पर्यावरण संकट मनुष्य के स्वास्थ्य को प्रभावित करता है।

विकास और पर्यावरण में संतुलन आज की परम आवश्यकता है मानव जीवन की सभी गतिविधियों में से औद्योगिकीकरण एक ऐसी गतिविधि है जिससे पर्यावरण को सबसे अधिक खतरा होता है। ऐसा इसलिये होता है क्योंकि विभिन्न स्रोतों से एकत्रित की गई कच्ची सामग्रियों और ऊर्जा का एक ही स्थान पर लाकर उन्हें उत्पादों में परिवर्तित किया जाता है। इस प्रक्रिया से निश्चित ही काफी मात्रा में अपशिष्ट पदार्थ निकलते हैं। ये अपशिष्ट ठोस, द्रव्य और गैसों के रूप में निकलते हैं। उद्योगों से होने वाले अपशिष्ट बहिस्राव से उनके निकट बसे लोगों के स्वास्थ्य के लिये खतरा पैदा हो सकता है। इनसे अम्ल वर्षा के साथ–साथ, पृथ्वी का तापमान बढ़ने और ओजोन की परत में छेद होने की स्थिति आ सकती है। द्रव्य के रूप में बहकर निकलने वाले अपशिष्टों से उद्योग के निकट स्थित भूजल दूषित हो जाता है और नदियों को प्रदूषित कर देता जो इस प्रदूषित जल को सैकड़ों मील दूर बहाकर ले जाती है।

पर्यावरण एवं विकास का आपस में विपरीत सम्बंध माना जाता है, जबकि दोनों एक दूसरे के पूरक होने चाहिए। निरन्तर विकास की बात से हम पर्यावरण और विकास के बीच शाश्वत समस्या के मुद्दे पर पहुँच जाते हैं। भारत और अन्य विकसित देश इसी समस्या से दो–चार हो रहे हैं। निरन्तर विकास वहाँ सम्भव है, जहाँ पर्यावरण और विकास एक–दूसरे के परिपूरक बन जाते हैं। एक कार्यशील प्रजातांत्रिक व्यवस्था में बेहतर जीवनस्तर जीने की गरीब लोगों की आकांक्षाओं को अनदेखा नहीं किया जा सकता। लेकिन इसके साथ ही, विकास के नाम पर देश के पर्यावरण को नष्ट करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। जरूरत इस बात की है कि विकास और पर्यावरण आवश्यकताओं के बीच सन्तुलन स्थापित किया जाये।

पर्यावरण सुरक्षा हेतु भारत के स्तर से तमाम प्रयास किये गये है। भारतीय संविधान विश्व का पहला संविधान है जिसमें पर्यावरण संरक्षण के लिए विशिष्ट प्रावधान है। पर्यावरण से संबंधित समस्याओं और मसलों पर भारत सरकार ने चौथी पंचवर्षीय योजना के दौरान विशेष ध्यान देते हुए 1972 में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के तहत् राष्ट्रीय पर्यावरण आयोजना एवं समन्वय समिति का गठन किया। जन साधारण के प्रति जागरूकता लाने के लिए 1976 में 42वें संविधान संशोधन द्वारा नीति निर्देशक तत्व के अंतर्गत अनुच्छेद 48ए (छ) में निम्नलिखित प्रावधान किए गए। नागरिकों के मूल कर्तव्य के अन्तर्गत अनुच्छेद 51ए (छ) में प्राकृतिक पर्यावरण की जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव है, रक्षा करें और उसका संवर्द्धन करें तथा प्राणिमात्र के प्रति दया भाव रखें, का प्राविधान किया गया है।

पर्यावरण और मानव समाज में अटूट संबंध है। मानव जाति (होमो सेपिएंस) का उद्भव लगभग पच्चीस लाख वर्षों से भी अधिक समय

पूर्व हुआ था। उनमें मस्तिष्क अत्यंत विकसित होने के कारण वे सोचने की क्षमता रखते थे और अपने निर्णयों का उपयोग करते थे। मानव ने दो पैरों पर सीधे खड़े होकर चलना शुरू किया जिसके कारण उनके हाथ अपने शारीरिक कार्य करने के लिये स्वतंत्र हो गये।

भारतवर्ष में पर्यावरण की एक संस्कृति रहीं है। भारतीय प्रज्ञा के अनुसार मनुष्य प्रकृति का स्वामी नहीं, उसकी संतान है। अपने पर्यावरण के प्रति ऋषि–मुनियों की भावुकता और उनका अनुराग इस धारणा को पुष्ट करता है। इसकी झलक वेद–उपनिषदों एवं अन्य पौराणिक साहित्यों में भी मिलती है। ऋग्वेद के पृथ्वी सूक्त में मानव और पृथ्वी के स्नेह बंधन अनेक रूपों में वर्णित है। **'माता भूमिः पुत्रौहं पृथिव्याः', 'विश्वंभरा बसुधानी प्रतिष्ठा हरिण्य वक्षा जगतो निवेशिनी'** (ऋग्वेद 12.1.6.) इत्यादि ऐसी अनुभूति के द्योतक है। संतानोत्पत्ति से लेकर पालन–पोषण और संसार को अपने आसमानी आंचल से ढंके रखने के कारण प्रकृति को मनुष्य ने स्त्री रूप में देखा है। भूमि की उर्वरा शक्ति से प्रेरित होकर श्रद्धा और उपासना भाव की विशिष्टतम परिणति मातृ–भूमि की अवधारणा में हुई है। अथर्ववेद की (12.1.14) ऋचा में एक ओर उस शक्ति से अपार सुख पाने की आशा है तो दूसरी ओर उसकी रक्षा करने का भाव छलक उठता है। वेद की अनेक ऋचाओं में प्रकृति के विभिन्न तत्वों–सूर्य, चांद, तारे, आकाश, पृथ्वी, जाल, अग्नि, वनस्पति इत्यादि की देव रूपों में उपासना की गई है। ये ऋचाएं प्रकृति एवं पर्यावरण के प्रति आभार व्यक्त करने का माध्यम है और इनमें आध्यात्मिक अनुभूतियां भी निहित हैं। पर्यावरण में उपस्थित सभी तत्वों का आपस में विशेष सामंजस्य होता है, जो संपूर्ण प्रकृति में संतुलन बनाए रखता है। उन तत्वों के प्रति लापरवाह होने पर उनकी संगति बिगड़ जाती है और संतुलन भंग हो जाता है। आधुनिक युग में, एक ओर तो मानव विकास के शीर्ष पर पहुंच चुका है, दूसरी ओर अनेक प्राकृतिक विसंगतियां उत्पन्न हो गई हैं। फलतः प्रकृति अपना संतुलन खोती जा रही है।

पिछले कई दशकों से विश्व के विकसित और विकासशील देश पर्यावरण को लेकर चिंतित है, क्योंकि मानव के हाथों शोषित होती हुई प्रकृति कुपित हो गयी है और उसने अब पलटकर, चुनौती देना आरंभ कर दिया है। वैज्ञानिक विकास के दुष्प्रभाव का नमूना तो हम देख चुके हैं, और अब औद्योगिक विकास के दुष्चक्र में फंसे हुए आम आदमी की त्राहि–त्राहि सुन रहे है। वैज्ञानिक या औद्योगिक विकास के विषय में सबने सोचा, लेकिन उसके साथ स्वतः उत्पन्न होने वाले हानिकारक तत्वों पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। परमाणु ऊर्जा के अवशेषों को नदियों या समुद्रों में छोड़ दिया जाता है, जो धोरे–धीरे भूमिगत जल में मिल जाते है और अंततः उसकी रेडियोधर्मिता मिट्टी का अंश बन जाती है। आज भारत विश्व के सर्वाधिक प्रदूषित देशों की पंक्ति में खड़ा है। यहां की हवा, जल, मिट्टी इतनी अधिक प्रदूषित हो चुकी है कि तरह–तरह की भीषण बीमारियों ने जड़ पकड़ ली है। वर्तमान में प्रदूषित पर्यावरण के कारण जो परिस्थिति उत्पन्न हो गयी है, वह मनुष्यों की विवेकहीनता की ओर इंगित करती है।

अध्यात्म, सभ्य समाज और पर्यावरण संरक्षण हमारी संस्कृति रहीं है। तमाम भौतिक सुख सुविधाओं के बावजूद आज मनुष्य अपने आपको अत्यंत अशांत महसूस कर रहा है। यूं कहना चाहिए कि जैसे जैसे हमने भौतिक सुख साधन जुटाएं हैं, हमने हमारी मन की शान्ति खो दी है। विदेशी लोग जिस शांति को भारत की मंत्र, योग, प्रार्थना एवं विभिन्न आध्यात्मिक आहार विहार की साधनाओं एवं क्रियाओं द्वारा प्राप्त करने का प्रयास कर रहे हैं, वहीं हम विगत दशकों में इनसे दूर हुए हैं । हमारा भारत ध्यान एवं विशिष्ट विद्याओं का मुख्य केंद्र हुआ करता था। इसका एक मुख्य कारण हमारे ऋषि मुनि का ध्यान में तल्लीन हो जाना, ध्यान की सिद्धि प्राप्त हो जाना,

जो अब दूर हो गई है। ध्यान की सिद्धि से त्रि–नेत्र खुलना सम्भव होना, टेलीपैथी जैसी योग्यताएं प्राप्त होना सम्भव था। ध्यान की सिद्धि के लिए जो वातावरण एवं परिस्थितियाँ हमारे देश में ज्यादा रूप में सुलभ तरीके से उपलब्ध होती थी, वो अन्यत्र कम थी। हमारे देश की आध्यात्मिक व्यवस्था के अनुसार आयु के अंतिम वर्षों में संन्यास ले लेना या संन्यास के तुल्य जैसा जीवन बिताना शामिल था, अर्थात क्रोध, मान, माया, लोभ, कषाय, राग, द्वेष को बिल्कुल छोडना या कम करना, आत्मा के कल्याण की तरफ ध्यान देना शामिल था जो कि जंगलों एवं निर्जन पर्वतों पर ही सम्भव थी। भौतिक विकास करने की तरफ ध्यान देने में हम हमारी इस मूलभूत आवश्यकता को भूल से गए हैं।

हम जिस नगर, और उप नगर तथा गांव में रहते हैं, उसके बाहर भी बड़े क्षेत्र को घेरे हुए इस तरह के जंगल होने चाहिए, अर्थात जंगल जैसा दिखने वाला ऐसा वातावरण हो जिसमें खतरनाक किस्म के जानवरों को छोड़कर सब तरह के जानवर (पशु–पक्षी) भी जीवन यापन कर सकें। विभिन्न जाति–प्रजाति के पशु पक्षियों का पर्यावरणीय संतुलन बनाने में बड़ा योगदान होता है। इनका धीरे धीरे लुप्त हो जाना पर्यावरणीय विषमता को बढ़ाने का एक सबसे बड़ा कारण है। स्वतंत्रता सभी को प्रिय होती है। पशु पक्षी को भी स्वतंत्रता उतनी ही प्रिय लगती है जितनी हमें। हम इनको बन्धन में रखकर बचाना चाहते हैं जो सम्भव नहीं है। किसी जाति–प्रजाति को बंधन में रखते हुए हम बढ़ाना चाहें, सम्भव नहीं है । आज हमें सभी लुप्त होती जा रही पशुओं की विभिन्न प्रजातियों को बचाना चाहिए हैं। पर्यावरण सरंक्षण को सबसे बड़ा कर्तव्य घोषित किया जाना चाहिए। उक्त के अलावा भी जहाँ भी सम्भव हो, पर्यावरण बढ़ाने से सम्बंधित कार्य करने वाले को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

इस लेख में विशेष रूप से कृषि–ऋषि परम्परा की उत्पत्ति एवं विकास, भारतीय कृषि की विशेषताएं एवं सामर्थ्य, वैश्विक स्तर पर कृषि विकास में योगदान, कृषि के विकास में बाधक तत्व एवं कारक तथा कृषि के विकास हेतु अहम सुझाव देने का प्रयास किया जा रहा है।

कृषि–ऋषि की उत्पत्ति एवं विकास

कृषि एक वैदिक शब्द ऋषि से निकला हुआ है, जिसका अर्थ है **जमीन जोतने का क्रिया।** कृषि ही समस्त संस्कृतियों की जननी है अर्थात् कृषि नही तो संस्कृति भी नहीं। वर्णाक्षरों के क्रम में कृषि अर्थात् ***'क'*** का प्रथम स्थान है। इसी प्रकार अंग्रेजी वर्णमाला में ***एग्रीकल्चर*** शब्द इसके प्रथम अक्षर ***"ए"*** से प्रारम्भ होता है। ***एग्रीकल्चर दो शब्द–एग्री+कल्चर*** से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है अग्रीकल्चर अर्थात् ऐसी संस्कृति जिसमें सबकी सहमति हो। एग्रीकल्चर को अग्रणी कल्चर भी कहते है। भारतवर्ष कृषि एवं ऋषि प्रधान देश रहा है और है भी। भगवान ***कृष्ण स्वयं 'गोपालक'*** एवं उनके ***बड़े भाई बलराम हलधर 'कृषक' थे। कृष्ण का एक अर्थ है 'किसन' अर्थात किसान।*** भारत में कृषि एवं ऋषि परम्परा अनादि काल से भारतीय जनमानस को प्रेरित एवं पुष्पित–पल्लवित करती आ रही है। हमारे जीवन का प्रत्येक त्योहार और क्रिया या तो कृषि अथवा ऋषि परम्परा से जुड़ी हुयी है।

कृषि की विशेषताएं एवं सामर्थ्य

"अन्नं ब्रहमेति व्यजानात" अर्थात् अन्न ही ईश्वर है, इसे जानो।

भारतवर्ष में कृषि जीवन पद्धति है। इसके बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। भारत में कृषकों एवं कृषि विशेषज्ञों के प्रयास से खाद्यान्न उत्पादन 1950 के मात्र 50 मिलियन टन से बढ़कर वर्ष 2018–19 में 262 मिलियन टन हो

गया है। उत्तर प्रदेश में समान अवधि में उत्पादन 12 मिलियन टन से बढ़कर 62 मिलियन टन हो गया है। आज हम अनाजों के मामले में आत्म निर्भर हो चुके हैं तथा भूखमरी को दूर करने में सक्षम हो सके है। भारत एवं उत्तर प्रदेश, गांवों एवं किसानों विशेष रूप से सीमान्त एवं लघु कृषकों, तथा कृषि मजदूरों का देश है। इस महान देश की समृद्धि इन्हीं 92 प्रतिशत कृषकों पर निर्भर है। इन सीमांत कृषकों एवं मजदूरों, विशेषकर महिला सीमांत कृषकों (1 हे0 से कम क्षेत्रफल) की संख्या लगभग 78 प्रतिशत है, जो भारतीय कृषि की मेरूदण्ड है एवं ये ही भारतीय तरक्की एवं समृद्धि की आत्मा एवं रक्त है। ईश्वर ने शब्दों से ज्यादा सुन्दर कुछ भी नहीं बनाया है। इसका आशय है कि ***'शब्द'*** अर्थात ***'मंत्र'*** अत्यन्त शक्तिशाली एवं ऊर्जा से भरपूर है। ***'मंत्र' संस्कृत एवं हिंदी*** शब्दों के विभिन्न संयोजन से बना होता है तथा एक विशेष ध्वनि के साथ उच्चारित करने पर बहुत ही सकारात्मक परिणाम प्राप्त होता है। ऐसा माना जाता है कि **'शब्द'** इस ब्रहमाण्ड में सबसे ठोस वस्तु है, जिसका प्रयोग इच्छित परिणाम प्राप्त करने के लिए किया जा सकता है। **'मंत्र'** को ही **'ब्रहम'** कहा गया है। तीव्र भावना के साथ उच्चारित करने पर मंत्र विलक्षण शक्ति/परिणाम प्रदान करता है। प्राचीन काल, में ऋषि–मुनि लोग **'मंत्रों'** की शक्ति का भली–भाँति प्रयोग दैनिक जीवन में करते थे तथा विशेष मौकों पर दिव्यास्त्र इत्यादि का आवाहन कर आवश्यकतानुसार उनका उपयोग करते थे। **'मंत्र'** को **'नाद'** के रूप में जिन्हें ब्रहमनाद कहते है। नियमितरूप से **'यज्ञ'** संचालन में ब्रहमनाद (मंत्रोंच्चार) करने से पर्यावरण पुष्ट एवं शुद्ध होता है, जो सभी जीवधारियों के लिए लाभदायक है। उत्तर प्रदेश सरकार ने मिड डे मील योजना को **''अन्न पूर्ण ब्रहम है''** का नारा दिया है।

गाँधी जी ने हिन्दी शब्दों के उचित संयोजन से देश को एक मंत्र/नारा दिया **'अंग्रेजो भारत छोड़ो : करो या मरो।'** सुभाष चन्द्र बोस ने एक नारा दिया **'दिल्ली चलो ''तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूँगा'।** शास्त्री जी ने एक मंत्र **'जय जवान–जय किसान'** नारे के रूप में दिया। प्रधानमत्री मोदी जी ने ''**सबका साथ सब का विकास और सबका विश्वास**'' तथा **''मेरा गाँव मेरा गौरव'' पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने ''जय जवान, जय किसान, जय विज्ञान,'' नारा दिया है। ये सभी हिन्दी नारे** काफी प्रभावशाली सिद्ध हुये है और हो रहे है। खेती की तैयारी, सिंचाई, खाद के प्रयोग, कटाई, मड़ाई तथा अन्न ग्रहण करते समय ईश्वर की याद में सकारात्मक ऊर्जा के साथ पढ़ा गया संस्कृत–हिंदी में मंत्र और विचार अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है। आजकल कीट रोगों को दूर करने तथा गुणवत्ता एवं स्वाद युक्त उत्पाद प्राप्त करने के लिए मंत्रों का उपयोग **'हीलर'** के रूप में किया जाता है। खेती–बाड़ी ***'अग्निहोत्र''*** का प्रचलन आजकल बहुत तेजी से बढ़ा है। सूर्योदय के समय ***'सूर्याय स्वाहा। सूर्याय इदे न मम्।। प्रजापतये स्वाहा। प्रजापतये इदं न मम्।। मंत्र तथा सूर्यास्त के स्कज अग्नये स्वाहा। अग्नये इदं न मम्।। प्रजापतये स्वाहा। प्रजापतये इद न मम्।।'*** मंत्र स्पष्टता एवं धैर्य के साथ उच्चारण से अधिक एवं **गुणवत्ता–युक्त उत्पाद** प्राप्त होता है। एक कहावत बहुत प्रचालित है **'सुर साधे, सब सधे'** यानी संगीत सभी समस्याओं का समाधान है। पूरा ब्रहमाण्ड संगीतमय है। प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि खड़ी फसल में हिन्दी अथवा भारतीय भाषाओं में प्रतिदिन **आधा घंटा संगीत और गायन का प्रयोग** करने मात्र से तेजी से फसल में बढ़वार, उर्वरायुक्त भूमि तथा स्वाद युक्त अधिक उत्पादन प्राप्त होता है।

वैश्विक स्तर पर कृषि के विकास में योगदान

कृषि न केवल एक दूसरे के विकास में सहायक है बल्कि एक दूसरे के पूरक भी है। एग्रीमेन्ट के

अन्तर्गत भारत के **गिरमिटिया** कृषि मजदूर एवं कृषको ने विदेशों में भारतीय कृषि–ऋषि परम्परा एवं संस्कृत–हिन्दी को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। इन्होंने अपने विदेश प्रवास के साथ भारतीय खेती–बाड़ी व हिन्दी भाषा को कई देशों में लोकप्रिय बनाया है जिनमें मॉरिशस, नेपाल इत्यादि शामिल हैं। स्वतंन्त्रता के पश्चात खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर होने में उन्नतिशील प्रजातियों, बढ़ते सिंचाई संसाधनों, रासायनिक उर्वरकों, बढ़ते कृषि यंत्रीकरण, कृषि प्रसार, न्यूनतम समर्थन मूल्य, कृषि विपणन, प्रसंस्करण तथा प्रगतिशील किसानों का अहम योगदान है। जहाँ तक कृषि वैज्ञानिकों के योगदान का प्रश्न है। हरित क्रान्ति में डा0 एम0एस0 स्वामीनाथन तथा श्वेत क्रान्ति में डा0 वी0 कुरियन का नाम अति सम्मान के साथ लिया जाता है। इसके साथ–साथ शोध एवं विकास कम्पनियों का भी कृषि उत्पादन में अहम भूमिका है।

महानतम कृषि वैज्ञानिक एवं महाकवि घाघ एवं भददीय ने अपने एकदम सटीक मौसम की भविष्यवाणी तथा खेती–बाड़ी सम्बन्धी अनुभवों एवं जानकारी को हिन्दी में कविता एवं दोहे के माध्यम से प्रस्तुत कर कृषि एवं हिन्दी के विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। हिन्दी में उनकी कविताएं एवं दोहे आज भी वैज्ञानिक कृषि के युग में पत्थर की लकीर माना जाता है। घाघ के सटीक ज्ञान एवं मौसम अनुमानों पर आज कल शोध हो रहा है, और इसे कृषि में अपनाया जा रहा है। सम्राट अकबर ने घाघ को हिन्दी भाषा में कृषि के सटीक ज्ञान और मौसम के सही अनुमान के कारण घाघ को 'चौधरी' की उपाधि दी थी। इसीलिए घाघ के कुटुम्बी अभी तक अपने को चौधरी कहते है। ***'जाको खेत में पड़ा न गोबर। उस किसान को जानो दूबर।।*** **आज भी सही है।**

कृषि के विकास में बाधक तत्व एवं कारक

कृषि के सम्यक विकास में अंग्रेजी और अंग्रेजियत तथा नकल सबसे बड़ी बाधा है। हम अपनी समृद्ध कृषि–ऋषि एवं गुरु–शिष्य परम्परा भूल चुके है, जिससे प्रकृति, पर्यावरण एवं मनुष्य का स्वास्थ्य खतरे में है। आज भी हिन्दी भाषा में कृषि साहित्य का घोर अकाल है तथा इसके लिए अंग्रेजी के प्रति मानसिक गुलामी भी कम उत्तरदायी नहीं है। हिन्दी के प्रति हीनता का भाव तथा अंग्रेजी के प्रति गौरव का भाव हमारे सम्यक विकास में बाधा है।

आज भारत के समक्ष उसके प्राकृतिक संसाधनों यथा **भूमि, जल, वनस्पति, हवा के क्षरण के साथ–साथ** मानवीय संसाधनों के क्षरण की गम्भीरतम चुनौती है। अपने लालच एवं अज्ञानता के कारण **''गहन कृषि''** अर्थात अधिक उत्पादकता हेतु किसान अनुचित रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का उपयोग कर रहे हैं। इसके कारण भूमि का क्षरण एवं भूमि का अम्लीकरण हो रहा है एवं मृदा में लाभदायक सूक्ष्मजीवियों के क्रिया–कलाप कुप्रभावित हो रहे हैं, और प्राकृतिक संसाधनों में प्रदूषण की मात्रा में भारी वृद्धि हो रही है, जो मृदा स्वास्थ्य एवं उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है तथा इन संसाधनों यथा–भूमि, जल, वनस्पति, जानवर तथा जन के संवर्द्धन एवं प्रबन्धन के अभाव में **बाढ़, अकाल एवं सूखे की समस्या में बढ़ोत्तरी हो रही है जिस पर अनुदान के रूप में अरबों रूपये प्रति वर्ष व्यर्थ व्यय हो रहा है।** लालच एवं लाभ–प्रेरित आर्थिक एवं स्वार्थ–प्रेरित राजनैतिक व्यवस्था आज कृषि की कृषि की सबसे बड़ी समस्या है। मोटे अनाजो, **दलहन एवं तिलहन के उत्पादन में हम अभी भी हम बहुत पीछे है** और इसे प्रत्येक वर्ष आयात करना पड़ता है, तथा भारी मात्रा में विदेशी मुद्रा खर्च होता है। **हमारी मूल समस्या देश के 92 प्रतिशत लघु एवं सीमान्त कृषकों के माध्यम से उत्पादन न होना** है। लेकिन वर्तमान में इस पर

अमल न कर कारपोरेट एवं कान्ट्रेक्ट खेती को बढ़ावा देने से ये लघु एवं सीमान्त कृषकों का जीवन कष्टमय हो रहा है। **मेरी नजर में राष्ट्रभाषा एवं राष्ट्रीयता के विकास में तीन बाधाये मुख्य है–1. भारतीयों में राष्ट्रीय चरित्र का अभाव, 2. नागरिकों में अभी भी गुलामी मानसिकता तथा 3. राजनैतिक इच्छाशक्ति का अभाव।**

अध्यात्मिक एवं जैविक प्राकृतिक खेती के विकास हेतु अहम सुझाव

प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने कहा है कि ***"सब कुछ इन्तजार कर सकता है लेकिन कृषि नहीं"***। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी कहते है कि ***"खेती–बाड़ी के जिस धन्धें पर तीन–चौथाई भारतीयों की आजीविका निर्भर है, उसकी उपेक्षा किसी आत्मघात से कम नहीं*** **है और इसलिए इसे सर्वोच्च प्राथामिकता मिलनी चाहिए।"**

सतत हरित क्रान्ति (प्राकृतिक योगिक सजीव खेती) आज की परम आवश्यकता है। रासयानिक खेती का समाधान आघ्यात्मिक एवं नैतिक कृषि है। आज कृषि अर्थशास्त्र एवं किसान राजनीति का आध्यात्मीकरण आवश्यक है। इन समस्याओं का अन्तिम समाधान निश्चित रूप से **'आध्यात्मिक सतत कृषि क्रान्ति'**के संकल्प में निहित है। गॉधी जी ने कहा था कि राष्ट्र के सम्यक एवं सर्वागीढ़ विकास के लिये **"अधिकतम हाथों (92 प्रतिशत छोटे एवं सीमान्त कृषको) से अधिकतम उत्पादन होना चाहिए,"** आज **परंपरागत लेकिन वैज्ञानिक खेती की आवश्यकता है।**

आज 'परंपरागत खेती' की शुरुआत हो चुकी है। इससे आपदा को मात देने की पहल की गई है। इसमें जहां रसायनों का प्रयोग नही के बराबर होगा, वहीं जैविक खादों से की जाने वाली खेती को प्रोत्साहित किया जा रहा है। पशुधन उत्पादों का खेती में ज्यादा से ज्यादा प्रयोग होना चाहिए। परंपरागत व जैविक खेती से जहां लागत कम होगी वहीं पैदावार में कमी भी नहीं आएगी। जैविक उत्पाद का अधिक मूल्य होने के कारण किसानों की आमदनी बढ़ेगी। अब एक मात्र विकल्प परंपरागत जैविक खेती ही होगी और है। किसानों में खाद के प्रयोग की विधियों की जानकारी देने के लिए अभियान चलाया जा रहा है। खाद उत्पादक कंपनियों के साथ कृषि प्रसार व्यवस्था को और दूरूस्त किया जा रहा है। किसानों को फसल चक्र के प्रयोग से खेती की उर्वरा क्षमता को बढ़ाने पर जोर दिया जाएगा। इसके लिए **फसल विविधीकरण** को प्रोत्साहित किया जा रहा है। कृषि–पशुपालन एवं वाणिज्य (उत्पादन और विक्रय) की महत्ता को समझते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के अध्याय 18 के श्लोक 44 में **"कृषि गौरक्ष्य वाणिज्यम"** ही टिकाऊ खेती है, पर प्रकाश डाला है।

1. **"चस्यामन्नं ब्रीहियवौ यस्या इमाः पंच कृष्टयः। भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे।।"**

   (अथर्ववेद 12/1/42) अर्थात जिसमें धान और जौ आदि विविध अन्न उत्पन्न होते है, जिसके निवासी है, मेघ जिसका पालन करते है और वर्षा जल से जिसे तृप्त करते है, उस भूमि माता को मेरा नमस्कार हों।

2. **"भूमि पंर्जन्य प्रयसा समऽग्धि।" (अथर्ववेद 4/15) अर्थात** हे बादल ! भूमि को पानी से सीच।

3. **"वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिम्।" (अथर्ववेद 4/15/2) अर्थात** वर्षा की धारा भूमि को उपजाऊ बनाए।

4. **"वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु।" (अथर्ववेद 4/15/1) अर्थात** रिमझिम करती हुई वर्षा की बूदें भूमि को तृप्त करें।

आध्यात्मिक खेती के प्रोत्साहन हेतु निम्नलिखित छः सूत्रों पर क्रियान्यवन से पर्यावरण, सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक समस्याओं का एकमुश्त समाधान हो सकेगाः–

1–जैविक खेती हेतु पंच महाभूतों (पांच 'ज') यथा जमीन, जल, जंगल, जन तथा जानवर का संग्रहण, संरक्षण, सर्म्बधन एवं उचित प्रबन्धन।

''व इजात–वल्ला सआ फिल्अर्जि लियुफिस–दफीहा व यहिलकल्हर्–सवन्नस–ल वल्लाहु ला यहिब्बुल्फसाद।'' –कुरान शरीफ

भावार्थ – जानवरों को मारने, खेती को खराब करने, जमीन में खराबी फैलाने वाले इंसान को अल्लाह पसन्द नहीं करता।

प्राकृतिक संसाधनों जैसे मृदा, जल एवं वनस्पतियों के सम्यक संरक्षण एवं प्रबंधन के अभाव में लगभग प्रतिवर्ष देश एवं प्रदेश को सूखा, बाढ़ तथा अकाल जैसी प्राकृतिक आपदाओं का सामना करना पड़ता है। कुओं, नदी, नालों, तालाबों, एवं झीलों इत्यादि जैसे प्राकृतिक जल श्रोतों में सिल्ट जमा हो जाने के कारण ये आपदाएं आती है। जिसके कारण एक ओर मानव एवं पशुओं के लिए पेय जल एवं सिंचाई के लिए आवष्यक पानी की कमी हो जाती, वहीं दूसरी ओर सरकार को अनुदान के रूप में प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये व्यय करने पड़ते है। **यदि हमें कृषि में टिकाऊ खेती एवं सम्यक उत्पादन, उत्पादकता, जल स्तर में वृद्धि, गुणवत्ता युक्त पानी की उपलब्धता सुनिष्चित करनी है और सूखा, बाढ़ एवं अकाल जैसी आपदाओं से निजात पानी है तो इसका एकमात्र उपाय मृदा एवं जल का संग्रहण, संरक्षण, संवर्धन एवं प्रबंधन पर सबसे अधिक ध्यान देना होगा।**

2 – जैविक कृषि/सजीव खेती/प्राकृतिक खेती/कुदरती खेती/यौगिक खेती का प्रयोग

कुदरती अथवा सजीव खेती एक जीवन पद्धति है। इसमें मानव जीवन की भूख मिटाने के साथ समस्त जीव–जगत के पालन का विचार है। इसे ऋषि–खेती भी इसलिए कहते है क्योंकि ऋषि–मुनि कन्द,फल, मूल और दूध इत्यादि प्राकृतिक आहार भोजन के रूप में ग्रहण करते थे। कुदरती खेती से बदले में षुद्ध हवा एवं पानी तथा उपजाऊ भूमि मिलती है। **यह खेती–बाड़ी धरती को गर्म होने से बचाने और मौसम के नियंत्रण में मददगार है।** जैविक खेती एक समग्र उत्पादन प्रबन्धन प्रणाली है जो कृषि, पर्यावरणीय स्वास्थ्य तथा जैवविधिता को प्रोत्सहित एवं बढ़ावा देता है। इसमें आनफार्म कृषि निवेषो को आफफार्म निवेषों के मुकाबले प्राथमिकता दिया जाता है, एवं **स्थानीय पारम्परिक–खेती–प्रणाली** को प्राथमिकता प्रदान किया जाता है। यह **मृदा–उर्वरता–क्षमता** को लगातार सुधारता एवं बढ़ाता है जबकि रासायनिक एवं सघन खेती भूमि की उर्वर–क्षमता को घटाता है तथा भूमि को बंजर भी बनाता है।

जैविक/सजीव/कुदरती खेती/षून्य बजट खेती में **1. संसाधन संरक्षण पद्धति पर विशेष ध्यान देते हुए कम से कम जुताई (जीरो टिलेज) के माध्यम से खेती की जाती है।** 2. फसल अवशेष को जलाने के बजाय भूमि में पुनः वापस कर उर्वरता बढ़ायी जाती है तथा इस प्रकार मृदा स्वास्थ्य में सुधार होता है। 3. खेत समतलीकरण के माध्यम से कम पानी से ज्यादा फसल क्षेत्रों में आवष्यकतानुसार सिंचाई एवं उर्वरक प्रयोग होता है। 4. महाकवि **'धाध'** ने कहा है कि **'जाको खेत में पड़ा न गोबर। उस किसान को जानो दूबर।।'** 5. कृषि–पशुपालन एवं वाणिज्य (उत्पादन और विक्रय) की महत्ता को समझते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के अध्याय–18 श्लोक–44 में **''कृषि गौरक्ष्य वाणिज्यम''** ही टिकाऊ खेती है। 6. सस्य विज्ञान के सिद्धान्तो यथा फसल चक्र, अन्तःफसली, खाद्यान्न के उपरान्त दलहनी एवं तिलहनी फसलों

को, कम पानी वाली फसलों के उपरान्त अधिक पानी वाली फसले, कम गहरी वाली जड़ो के बाद ज्यादा गहरी जड़ो वाली, फसलों का प्रयोग होता है। 7. वर्मी कम्पोस्ट/नडेप कम्पोस्ट, काऊ हार्न मैन्योर, बी.डी–500, काऊपिट–पैट, काऊ–यूरिन, नीम की खली, बायो एजेन्डस का प्रयोग बहुतायत से होता है। 8. समन्वित कृषि प्रणाली, मिश्रित खेती, मिश्रित फसल, कृषि विविधीकरण, कृषि वानिकी, खाद्य प्रसंस्करण इत्यादि को खाद्य एवं पोषण सुरक्षा, पर्यावरण एवं **सामाजिक सुरक्षा हेतु आध्यात्मिक खेती में बढ़ावा देना चाहिए।**

परम्परागत किसान फसल चक्र अपनाकर खेतों की उत्पादकता को बनाए रखते थे। दलहनी के बाद तिलहनी और फिर अनाज की खेती होती थी। दलहनी–फसलों की जड़ें गहराई तक जाती थीं। इससे नीचे की मिट्टी स्वतःभुरभुरी हो जाती थी। फसल कट जाने के बाद उसकी जड़ें मिट्टी के भीतर सड़ती थीं। इससे नीचे जीवाणु पैदा होते थे। वही फसलों के लिए खाद का काम करते थे। किसानों को यह समझना जरूरी है। किसानों की उनकी भाषा में समझाना भी होगा। जानकारियां किताबों में तो है,मगर किसानों तक पहुंचाने की प्रणाली पर पुनर्विचार की तत्काल परम आवष्यकता है।

3 – खेती–बाड़ी में ध्यान एवं सकारात्मक विचार ऊर्जा के प्रवाह द्वारा सम्यक उत्पादन एवं उत्पदकता।

इस ध्यान विधि द्वारा सम्यक फसलोत्पादन प्राप्त करने की प्रक्रिया को इसलिए भी बढ़ावा मिल रहा है क्योकि यह विधि कम लागत,(षून्य लगात) एवं सभी के लिए सुरक्षित है। **ध्यान विधि को दूर से भी** फसलोत्पादन एवं अधिक भूमि उर्वरता हेतु प्रयोग में लाया जा सकता है। प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया जा चुका है कि सभी वनस्पति एवं जन्तु–जगत में मनुष्य की भाँति समवेदना होती है जिसे वह ग्रहण कर तदनुसार **प्रतिकिया व्यक्त करता है।**

सकारात्मक विचार तंरग प्रेषण विधि में निम्न प्रयोग कर किया जा रहा हैः– 1. बीज षोधन– ध्यान कक्ष में बीज को षोधित करते हैं 2. ईष्वर की याद में हम बीजों/पौधो का रोपड़ करते है। 3. खड़ी फसल में ध्यान–प्रक्रिया आयोजित होती है। 4. रोग एवं कीटों के प्रकोप को कम करने के लिए भी इस विधि का सफलता पूर्वक प्रयोग हो रहा है। सकारात्मक विचार ऊर्जा ध्यान द्वारा निम्न लाभ पाये गये है। 1. बीज जमाव प्रतिषत में वृद्धि हुई है। 2. बीज के आकार एवं वजन में वृद्धि पाई गई। 3. ज्यादा स्वस्थ जड़ प्रणाली विकसित हुई। 4. सूक्ष्म जीवाणुओं को संख्या तथा उनकी गतिविधियों में वृद्धि हुई। 5. मूंगफली के तेल प्रतिषत में वृद्धि पाई गई। 6. कीट–रोगों में कमी दृष्टिगोचर हुई। 7. सब्जी–फसल उत्पाद में ज्यादा चमक एवं स्वाद में वृद्धि का अनुभव किया गया। 8. बीजों/अन्नों का **ज्यादा जीवन** (षेल्फ लाईफ) दृष्टिगोचर हुआ है।

4 – संगीत (म्यूजिक) द्वारा गुणवत्ता युक्त उत्पादन एवं स्वाद पर सकारात्मक प्रभाव।

''अन्नं ब्रहेति व्यजानात'' अर्थात अन्न ही ईष्वर है इसे जानो।

"God made nothing lovelier than words" अर्थात ईष्वर ने षब्दों से ज्यादा सुन्दर कुछ भी नहीं बनाया है। इसका आषय है कि **'षब्द'** अर्थात **'मंत्र'** अत्यन्त षक्तिषाली एवं ऊर्जा से भरपूर है।

'मंत्र' षब्दों के विभिन्न संयोजन से बना होता है तथा एक विशेष ध्वनि के साथ उच्चारित करने पर परिणाम बहुत ही सकारात्मक परिणाम प्राप्त होता है। ऐसा माना जाता है कि **'षब्द'** इस ब्रहमाण्ड में सबसे ठोस वस्तु है जिसका प्रयोग इच्छित परिणाम प्राप्त करने के लिए किया जा सकता है।

खेती की तैयारी, सिंचाई, खाद के प्रयोग, कटाई, मड़ाई तथा अन्न ग्रहण करते समय ईष्वर की याद में सकारात्मक ऊर्जा के साथ पढ़ा गया मंत्र/विचार अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है। आजकल कीट रोगों को दूर करने तथा गुणवत्ता एवं स्वाद युक्त उत्पाद प्राप्त करने के लिए मंत्रों का उपयोग **'हीलर'** के रूप में किया जाता है और किसान भाइयों को अधिक आय प्राप्त होती है। खेती–बाड़ी में अधिक आय तथा स्वस्थ उत्पाद प्राप्त करने के लिए 'अग्निहोत्र' का प्रचलन आजकल बहुत तेजी से बढ़ा है। एक निष्चित समय सूर्यास्त एवं सूर्योदय के वक्त कापर के एक विशेष समान आकार के पात्र में गाय के गोबर से निर्मित केक में अग्नि प्रज्वलित कर 15–20 खड़ें चावल को गाय के घी के साथ मिलाकर सूर्योदय काल में **'सूर्याय स्वाहा। सूर्याय इदे न मम्।। प्रजापतये स्वाहा। प्रजापतये इदं न मम्।। मंत्र तथा सूर्यास्त के स्कज अग्नये स्वाहा। अग्नये इदं न मम्।। प्रजापतये स्वाहा। प्रजापतये इदं न मम्।।'** मंत्र स्पष्टता एवं धैर्य के साथ उच्चारण से अधिक एवं **गुणवत्ता–युक्त उत्पाद** प्राप्त होता है।

5 – मंत्र के प्रयोग द्वारा गुणवत्तायुक्त उत्पादन में वृद्धि।

एक कहावत बहुत प्रचालित है **'सुर साधै, सब सधै'** यानी संगीत सभी समस्याओं का समाधान है। पूरा ब्रहमाण्ड संगीतमय है। जरूरत है इसका सही ढंग से सही समय पर उपयोग करने की ताकि इच्छित परिणाम प्राप्त किया जा सके। भगवान कृष्ण जब बासुरी बजाते थे तो सभी जीव–धारी पशु–पक्षी–मनुष्य तथा साँप इत्यादि भी ध्यानमग्न एवं मस्त होकर सुनते थे और अपने दायित्वों का निर्वहन सफलतापूर्वक करते थें।

कई षोधों द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि कृषि में **संगीत प्रयोग से फसल** में आषातीत बढ़ोत्तरी, स्वाद एवं गुणवत्तायुक्त उत्पाद तथा अधिक मूल्य भी मिलता है। भारत के पारम्परिक खेती में अच्छा प्राप्त करने के लिए खेत की जुताई–बुआई इत्यादि कियाए करते समय बैलों के गले में संगीतमय वातावरण उत्पन्न करने हेतु घुंघरू बाधा जाता है तथा किसान मस्त होकर लयवद्ध गाना गाते है। सुपाच्य दूध प्राप्त करने के लिए गायों/भैसों के गले में भी घंटी/घुंघरू का प्रयोग किया जाता है। धान की रोपाई के समय जड़ों को तत्काल स्थायित्व प्रदान करने तथा महिलाओं में ऊर्जा संचार करने के लिए महिलाएं **'सोहर' गाती है।** हमारे यहाँ बुआई–निराई तथा कटाई–मड़ाई के समय गायन का प्रचलन इसलिए भी होता है ताकि थकान कम हो और गुणवत्ताप्रद उत्पादन अधिक हों।

वर्तमान समय में मनुष्य एवं पौधों को बीमारियों से उपचार करने के लिए संगीत का उपयोग अस्पतालों एवं खेतों में **'हीलर'** के रूप में प्रचलन में है और इस संगीत का सकारात्मक परिणाम भी मिल रहा है। संगीत हर बीमारी का ईलाज माना जा रहा है।

6 – चंद्र गति (मूवमेंन्ट आफ मून) के अनुरूप खेती–बाड़ी की योजना बनाई जानी चाहिए।

चन्द्रमा की गति के अनुसार खेती–बाड़ी करने का प्रचलन सदियों से इस देष में प्रचलित है और बहुत सकारात्मक परिणाम देखने को मिला है। गृह–नक्षत्रों की तारीखों के अनुसार बुआई करने मात्र से उत्पादन में यथोचित वृद्धि देखी गई है। कहने का आषय है कि भूमि के ऊपर वाले पत्ती, फल, फूल इत्यादि अधिक एवं शक्तिशाली उत्पादों की वृद्धि शुक्ल–पक्ष में होती है तथा इसी प्रकार भूमि के अन्दर वाले उत्पादों में वृद्धि कृष्ण पक्ष में अधिक होता है। अच्छे एवं स्वस्थ उत्पाद प्राप्त करने के लिए चन्द्रमा की गति के अनुसार शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष में बुआई/रोपड करना चाहिए। **अतः** चन्द्रमा की गति एवं अवस्था के अनुरूप बुआई करने से बिना किसी लागत के अधिक उत्पादन प्राप्त किया जाता है। चन्द्रमा, पृथ्वी पर समुद्र से ज्वार–भाटा के लिए उत्तरदायी है

जिसके कारण मौसम एवं जलवायु में परिवर्तन होता है। **''अन्न पूर्ण ब्रहम है।''**

उपरोक्त के अतिरिक्त कृषि के सम्यक विकास हेतु निम्नलिखित सुझाव भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है, जैसे 1. प्राथमिक स्कूल, विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय स्तर पर कृषि विज्ञान को अनिवार्य किया जाये। 2. भारतीय कृषि सेवा एवं भारतीय राजभाषा सेवा का गठन किया जाये। 3. कृषि बजट अलग से हिन्दी में प्रस्तुत किया जाये तथा कृषि पर 50 प्रतिशत धनराशि आवंटित की जाए। 4. कृषि के प्रोत्साहन हेतु निरन्तर विदेश भ्रमण, कार्यशाला एवं प्रशिक्षण आयोजित किया जाये। 5. कृषि में उत्कृष्ठ कार्य करने वाले किसानों एवं कार्मिकों की सही–सही पहचान कर उन्हें विभिन्न पुरस्कारों यथा कृषि पंडित, पदम्श्री, पदम् विभूषण, भारत रत्न से सम्मानित किया जाये। 6. राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आई0सी0ए0आर0) एवं भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान(आई0ए0आर0आई0) एवं केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालयों तथा राज्य कृषि विश्वविद्यालयों में हिन्दी माध्यम को अनिवार्य किया जाये। 7. कृषि में समस्त शोध कार्य हिन्दी में अनिवार्य रूप से प्रकाशित किया जाये। 8. जिला न्यायालय, उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय के कार्य की भाषा एवं निर्णय अनिवार्य रू‍ हिन्दी भाषा में हो। 9. कृषि कार्य एवं हिन्दी भाषा में कार्य को राष्ट्रीय गर्व से जोड़ा जाए। 10. वेदों–पुराणों में वर्णित संस्कृत–हिन्दी एवं कृषि–ऋषि परम्परा की महिमा एवं योग जैसे गौरवशाली परम्परा को पुर्नजीवित किया जाए। 11. भारत विविध वनस्पतियों ओर औषधीय पौधों की दृष्टि से विपुल और समृद्ध है। इसे साजोया जाए तथा इसका सदुपयोग किया जाए विश्व का चिकित्सा जगत भारतीय जड़ी बूटियों के गुणों का ज्ञान कर उस पर निरन्तर अनुसंधान कर रहा है।

समय आ गया कि सरकारी स्कूलों के साथ–साथ सभी निजी स्कूलों में भी कृषि एवं प्रारम्भिक शिक्षण मातृभाषा में अनिवार्य कर दिया जाए। एक समर्थ एवं सशक्त राष्ट्र निर्माण के लिए हिंदी एवं कृषि अपरिहार्य है।

उपसंहार

भारत का भविष्य जैविक आध्यात्मिक खेती में ही है क्योंकि शाश्वत दृष्टिकोण होने की दशा में हमारा लक्ष्य वसुधैवकुटुम्बकम् एवं माँ कश्चित दुःख भाक भवेत होना चाहिए। राष्ट्रीय सुरक्षा खाद्य सुरक्षा से ही सम्भव है और खाद्य सुरक्षा आध्यात्मिक खेती द्वारा ही सम्भव है अधिकतम हाथों से (सीमान्त कृषकों) ही अधिकतम उत्पादन होना चाहिए। खेती करते समय धरती माता से क्षमा कर ही हल की जुताई करनी चाहिए। कृषि एवं ऋषि परम्परा आज की परम आवश्यकता है।

अन्नं तु धान्यसंभूतं धान्यं कृष्णा बिना न च।

तस्मात्सर्व परित्यज्य कृषि यत्नेन कारयेत।।

अर्थात भोजन अन्न से बनता है, अन्न खेती बिना उत्पन्न नहीं होता, अतएव दूसरे काम छोड़कर सबसे पहले खेती करनी चाहिए।

ऋषि–कृषि संस्कृति सरलता, सहजता, बराबरी, सद्भाव, सहभागिता का पाठ पढाती है, क्योंकि इसके बिना खेती हो ही नहीं सकती। इसीलिए वैश्विक स्तर पर भी कृषक संस्कृति के इस गुण को अपनाने की जरूरत है। **टैगोर जी ने कहा है कि** ''जिस प्रकार मॉ के दूध पर पलने वाला बालक अधिक स्वस्थ एवं बलवान बनता है, उसी तरह से मातृभाषा में पढ़ने से मन और मस्तिक अधिक दृढ़ बनते है।

अन्त में हमें याद रखना होगा ''कृषि च सस्यं च मनुष्या उपजीवान्ति'' अर्थात खेती अन्न के सहारे ही मनुष्य जीवित है। जल मृदा बचाएं–पर्यावरण एवं कृषि बढ़ाएं। **हमें दुर्लभ शरीर मिला है। अतः हम स्व का त्यागकर 'पर' के लिये जीयें। औरों को अपने आचरण से शिक्षा दें। दुनिया में जितनी अच्छी बातें है। कहीं जा चुकी**

है। अब बस अमल बाकी है। अतः भाषण बन्द कार्य शुरू।

सन्दर्भ

1. विन–विन–विन, दी आरफन वे–द्वारा गिरीश एन पाण्डेय
2. कृषि सेवा संदेश 2008–सम्पादक– डा0 एस0के0 सिंह।
3. त्यागार्चना सत्संग द्वारा स्वामी सच्चिदानंद भारती।
4. त्यागार्चना–डा0 एस0के0 सिंह।
5. श्रीमद् भगवत गीता द्वारा स्वामी रामसुख दास।
6. कृषि ज्ञान मंजूसा–कृषि निदेशालय, कृषि विभाग उत्तर प्रदेश।

Copyright © 2017, Dr. Uttara Yadav. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.